वैदिक सृष्टि विज्ञान-१

प्रो. कैलाश चतुर्वेदी
पूर्व निदेशक, संस्कृत शिक्षा विभाग
जयपुर, राजस्थान

मूकं करोति वाचालं, पङ्गुं लंघयते गिरिम्,
यत्कृपा तमहंवन्दे, परमानन्दमाधवम् ।।

पृथ्वी-सूर्य-चन्द्रमा-ग्रह-नक्षत्र-जल-तेज-वायु-आकाश आदि की उत्पत्ति कैसे हुई? इस विषय को लेकर मानव जाति के उद्गम से आज तक चिन्तकों और वैज्ञानिकों की अनेकानेक विचारधाराएँ प्रवाहित होती रही हैं। एक अज्ञात तत्व की कल्पना से लेकर BLACK HOLE तक की सम्भावनाओं पर विज्ञान की भी नयी नयी अवधारणाएँ बनती रहीं, मिटती रही और आज भी बनती जा रही हैं और ऐसी संभावना है कि भविष्य में मानव जाति के अस्तित्व तक विज्ञान के नित-नूतन आविष्कारों/अनुसंधानों के माध्यम से यह खोज जारी रहेगी। सर्वसम्मत सिद्धान्त न तो पहले कभी स्थापित हुआ है, और न ही आधुनिक विज्ञान की भावी संभावित खोजों से ऐसी कोई संभावना है।

दुर्भाग्य कहिए, अथवा सौभाग्य, पर आज तक इन दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों की कोपपूर्ण कृपादृष्टि भारतीय वैदिक चिन्तन की सूक्ष्मता एवं गहनता से परे रही है। दुर्भाग्य इसलिए कि 15000 वर्ष प्राचीन सनातन भारतीय संस्कृति का उत्तराधिकारी 'कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर-फिर ढूँढे घास' की लोकोक्ति का उदाहरण बनता हुआ विगत 3500 वर्ष से किसी अज्ञात शापवश अपना समस्त ज्ञानविज्ञान सर्वथा विस्मृत कर चुका है और प्रत्येक क्षेत्र में पश्चिमी जगत् का अन्धानुकरण कर रहा है। उसमें अपने 'वैदिक ज्ञान' की न तो कोई आन्तरिक चेतना शेष रही है और न ही वह, उसे जानने-समझने का कोई गम्भीर प्रयास करता हुआ दिखायी पड़ रहा है। भौतिक-सुखों की चाह में वह इतना उलझ गया है, कि उसकी समग्र बौद्धिक-अन्तश्चेतना क्षीण होती जा रही है।

सौभाग्य इसलिए कि प्रयोगशालाओं के परीक्षणों में उलझा पाश्चात्य वैज्ञानिक जगत्, आज भी शाश्वत वैदिक चिन्तन एवं उसकी अवधारणाओं का लेशमात्र भी स्पर्श नहीं कर पाया है - परिणामतः तनिक से भी प्राकृतिक झंझावात यथा आंधी-तूफान-जलवृष्टि-भूकम्प-ज्वालामुखी के एक रौद्ररूप के समक्ष असहाय हो जाता है।

अस्तु, आज हम आपके समक्ष सृष्टि-रचना के दो मूलभूत तत्त्वों का स्वरूप रखने का प्रयास करेंगे, जिनके माध्यम से असीम अज्ञेय-ऋतस्वरूप-परब्रह्म ने अपने विशाल एवं विद्यमान सृष्टि से त्रिगुणित लोक में रहते हुए

चतुर्थांश के रूप में समग्र-सृष्टि की रचना की। इसका प्रथम संकेत हमें ऋग्वेद के दशम मण्डल के 129 वें सूक्त में उल्लिखित इस मन्त्र से मिलता है-

एतावानस्य महिमातो, ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि, त्रिपादस्यामृतं दिवि।।
त्रिपादूर्ध्वमुदैत्पुरुषः, पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साऽशनानशने अभि[1]।।

अर्थात् उस अप्रतिम-अपरिमेय-अविज्ञात-पुरुषब्रह्म का महिमालोक इस दृश्यमान जगत् अथवा ब्रह्माण्ड से त्रिगुणित विशाल है, जिससे पृथक् रह कर उसने समग्र सृष्टि की रचना की।

ये दो मूलभूत तत्त्व क्या हैं? जिनसे उस ब्रह्मरस-सागर-स्वरूप ऋत परमात्मा ने सत् सृष्टि रची। प्रथम है 'वेद'। जिस ऋग्वेद ग्रंथ को हम और आप 'वेद' कह कर वेदों के मूलस्वरूप का सत्त्व नष्ट कर रहे हैं - वह वेद नहीं है, अपितु विद् धातु से उद्भूत वह जानने का अर्थबोधक 'स्थिति-तत्त्व' है, जिसके माध्यम से सर्वप्रथम सृष्टि-रचयिता ने अपने ऋत स्वरूप को प्रकट करने का उपक्रम किया, जो परमतत्व नाम-रूप-गुणहीन अवस्था में विद्यमान था, उसको नाम-रूप-गुण युक्त अवस्था में प्रकट किया। दूसरा मूल तत्त्व है 'ऋषि' जो मूलतः 'प्राण' के रूप में प्रकट हुआ और हमने भ्रान्तिवश उसे भी मनुष्य ऋषियों के रूप में प्रचारित कर दिया। वस्तुतः 'वेद' रूप वाक् अर्थात् शक्ति और ऋषि रूप बल अथवा एनर्जी दो ही ऐसे मूल तत्व हैं, जिनके माध्यम से असत् परमात्म तत्त्व सत् रूप में प्रकट हुआ। मानव-शरीर में स्थित सप्त-प्राण-रूप ऋषि इसी का बोध कराते हैं - ये हैं पुष्करपर्ण - वैश्वानर-तैजस-प्राज्ञ-दिव्य-ऋत और सत्य । सृष्टिरचनाकार ने अपने ऋत रूप को इन्हीं सप्तर्षि प्राणों द्वारा प्रकट किया। इसीलिए कहा जाता है, ऋषयोः मन्त्रद्रष्टारः।

सृष्टि का मूल कारण ये ही वाक् रूप सत्यवेद और द्रष्टास्वरूप ऋषि प्राण थे, जिनके द्वारा उस अदृश्य-अज्ञात-अकल्प्य-परमात्मा ने स्वयं को त्रिविध स्वरूप में प्रकट किया। जो परमात्मा पहले नाम-रूप-गुण-विहीन था, उसी ने सृष्टि प्रतिष्ठा-उपलब्धि रूप वेदात्मक नाम-रूप-गुण त्रयी द्वारा त्रिसत्य की सत्ता बना कर प्रस्तुत की।

आप कहेंगे, कि इस काल्पनिक शब्दाडम्बर से हम बिल्कुल नहीं समझ पाये कि कौन सा ऋत् परमात्मा, किस वेद-प्राण-द्वय के द्वारा सत् रूप में प्रकट हुआ, तो हम उसे आपको एक सर्वलोक विदित सामान्य प्रक्रिया के माध्यम

से समझाने का प्रयास करते हैं-

सारा विश्व जानता और मानता है, कि माता के गर्भ में स्थित बालक पिता द्वारा प्रदत्त बीज के रूप में गर्भाधान के द्वारा स्थापित हुआ। बस, तद्वत ही वह परमतत्त्व जो पहले बीज रूप में अदृश्यावस्था में था, वेदवाक् रूप सत्ता से 'स्वयम्भू स्वरूप' में स्थापित हुआ। बीजावस्था में शिशु का जिस प्रकार कोई दृश्यमान स्वरूप नहीं था- तद्वत उसका भी कोई रूप प्रकट नहीं हुआ - वह सर्वथा नाम-रूप-गुण-विहीन था। माता के गर्भ में प्राणवायु के धक्के से बाहर निकलते ही शिशु की सृष्टि हो गयी और लोक में उसकी 'नाम-रूप-गुण' युक्त अवस्था बन गयी। वहाँ भी ऋषि रूप चैतन्य प्राण प्रस्फुटित होते ही स्वयंभू लोक की उत्पत्ति हो गयी। क्या यह प्रक्रिया मानव-निर्मित है, कदापि नहीं, सृष्टि चाहे विश्व की हो अथवा मनुष्य की या फिर अन्य जड़-चेतन पदार्थों की , सृष्टिरचनाकार ही उसके मूल में विद्यमान होता है, जिसने स्वयं को ऋत् से सत्य, अज्ञात से ज्ञात तथा अवेद से वेद रूप में प्रकट किया। इसी लिए कहा गया है कि :-

ऋत्-सत्य-ऋत-सत्य-ऋत इसी क्रम में वह 'परब्रह्म' अपना सृष्टियज्ञ कर रहा है। अहृदय-अशरीर ऋत् है - सहृदय-सशरीर सत्य है। असीम एवं अशरीर तथा अहृदय होने की अवस्था में वह ऋत् है और अनन्त सूर्य-पृथिवी-चन्द्र आदि से मूर्त रूप धारण कर वह सत् है। सत् का बीज रूप ऋत् है और ऋत का प्रकट रूप सत्। अदृश्यमान अथवा दृश्यमान सभी अवस्थाओं में वह परब्रह्म सत्य है- अतः उसी का वर्णन करते हुए कहा गया है -

ऋतमेव परमेष्ठि, ऋतं नान्येति किञ्चन,
ऋते समुद्र आहितः, ऋते भूमिरियं श्रिता[2] ।

उस रस-स्वरूप-विशालतम सागर से ही अनन्त बिन्दु सृजित होते हैं और उसी में विलुप्त हो जाते हैं।

यहाँ उल्लिखित 'ऋषि' शब्द के अर्थ को लेकर भी हमें अपना भ्रम दूर कर लेना चाहिए। स्थूल रूप में हम जिन ऋषियों को मनुष्य ऋषि के पर्याय के रूप में लेते हैं, वस्तुतः वेद में वह चार स्वरूपों में अभिव्यक्त हुआ है- प्रथम है असत् प्राण रूप, दूसरा है नक्षत्र रूप, तीसरी श्रेणी वेदद्रष्टा ऋषियों की और अन्तिम व चतुर्थ है वेदवक्ता मनुष्य ऋषि। इसे भी लौकिक रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है, कि सदियों पूर्व एक परम्परा में उत्पन्न हुआ व्यक्ति भी द्विवेदी-त्रिवेदी-चतुर्वेदी कहा जाता था और आज उसकी शताधिक उत्तरवंश परम्परा में जन्मा भी उन्हीं उपाधियों से विभूषित होता है।

अस्तु, इसके पूर्व कि हम उस असत् ब्रह्म रूप सृष्टि रचनाकार की समस्त उत्तरोत्तर रचनाओं को विस्तृत रूप में समझने का प्रयास करें 'सिंहावलोकन न्याय' से विश्व की अन्य संस्कृतियों में मान्य एवं प्रचलित प्रमुख अवधारणाओं पर भी दृष्टि डालना समीचीन होगा।

वेद-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद्-स्मृतियाँ जिस परब्रह्म का प्रकटीकरण दो तत्त्वों 'वेद और ऋषि'-रस ओर बल - वाक् और प्राण रूप में स्वीकार करती है - उन्हें आधुनिक विज्ञान 'Energy and Force' नाम से कहता है और उनका प्रकटीकरण भी आकस्मिक रूप में ही स्वीकार करता है। सर्वप्रथम वैदिक संस्कृति के समानान्तर समझी जाने वाली 'ग्रीक-सभ्यता को ही लीजिए। ग्रीक मान्यता है 'Suddenly from light came 'GAEA' the mother earth and from her came URAUS or EREBUS, the sky along with other gods like pontus. GAEA and URAUS had 12 children. Then GAEA gave birth to some monsters.'[3]

किसी पूर्व-पृष्ठभूमि के बिना किसी पूर्व सत्ता के अचानक प्रकाश का छूना और उसके द्वारा पृथ्वी एवं आकाश रूप स्त्री-पुरुष युगल की सृष्टि का आधार क्या था, कौन था और किस रूप में था - यह उल्लेख ग्रीक सिद्धान्त में किसी भी रूप में नहीं मिलता।

इसके विपरीत एक दृष्टि अब वैदिक-अवधारणा पर डालिए, जो असत्-अमूर्त रूप में विद्यमान 'परब्रह्म' के सत् और मूर्त रूप का इस प्रकार वर्णन करती है-

नासदासीन्न सदासीत्तदानीं, नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्,
किमावरीव कुह कस्य शर्म्मन्नम्भः, किमासीद् गहनं गभीरम्,
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि, न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः
आनीदवातं स्वधया तदेकं, तस्माद्धान्यन्न पर किञ्चनास।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 129वें सूक्त में उल्लिखित इस मन्त्रद्वय में सर्वथा स्पष्ट रूप में उस अलक्ष्य, अपरिमित, असीम, अदृश्य परमात्व-तत्वं की सत्ता बता दी गयी है, जो हमें विश्व के अन्य किसी ग्रंथ में देखने को नहीं मिलती - ऋषि स्पष्ट कह रहा है कि प्रत्यक्ष-दृश्यमान सृष्टि-रचना से पूर्व न आकाश था, न अन्तरिक्ष, न पृथ्वी, न सूर्य, न चन्द्र, न जीवन-मृत्यु का कोई चिह्न। बस था तो वह एक सर्वशक्तिमान् वायुरहित, परमतत्त्व स्वज्योति प्रकाशमान 'परब्रह्म', जिसने अपनी कामना अथवा इच्छाशक्ति से इस सृष्टि का सर्जन किया।

उपर्युक्त सिद्धान्त की पुष्टि करने वाले सहस्त्रों उद्धरण प्रमाण-रूप में मिलते हैं पर यहाँ उन सबका उल्लेख किया जाना न तो संभव है और न ही समीचीन। केवल कतिपय प्रमुख मन्त्रात्मक उद्धरण प्रासंगिक रूप में यहाँ प्रस्तुत हैं-

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है -

असदेवेदमग्र आसीत्। असतः सद् अजायत[5]

अर्थात् पूर्वावस्था में सब कुछ असत् रूप था, जिससे सत् की उत्पत्ति हुई।

छान्दोग्य-उपनिषद् में कहा है -

असद्वा इदमग्र आसीत। किं तदसदिति। ऋषयो वा तदग्रेऽसदासीत्'[6]

सब कुछ पहले असत् अथवा अप्रकट रूप में था - तो फिर क्या था ? उत्तर देते हैं- वे प्राणरूप ऋषि ही थे, जो सर्वप्रथम सत् रूप में प्रकट हुए।

सर्वाधिक स्पष्ट एवं सरल रूप में इसका उल्लेख भगवान मनु के निम्न कथन में मिलता है, जो सृष्टि-रचना की सारभूत प्रक्रिया का वर्णन करता है-

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं, प्रसुप्तमिव सर्वतः।।
ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्,।
महाभूतादिवृत्तौजा प्रादुरासीत्तमोनुदः[7]**।।**

अर्थात् यह सम्पूर्ण दृश्यमान सृष्टि पहले सर्वथा अन्धकारमय, शून्यवत्, अज्ञात, बिना किसी प्रतीकात्मक चिह्न अथवा लक्षण के सुप्तावस्था में थी - जिसे उस परमशक्ति ने स्वयम्भू के रूप में प्रकट किया और क्रमशः समग्र महाभूतादि प्रपञ्च की रचना की।

यदि गहनता से विचार किया जाए तो उपर्युक्त सभी वैदिक सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान की 'BLACK HOLE' की नूतन अवधारणा को पुष्ट करने वाले हैं।

उस परमतत्व ने स्वयंभू - परमेष्ठि-सूर्य-पृथ्वी-चन्द्र रूप पञ्चपर्वा सृष्टि की रचना की, कैसे की - इसका उत्तर है वेद रूप वाक् और ऋषि रूप बल के साथ मिल कर वह स्वयं बीज रूप में पूर्व में विद्यमान था और सृजन हेतु

आवश्यक दो पदार्थों वाक् और ऋषि अथवा रस और बल से उसने सृष्टि रचना की।

इसी सन्दर्भ में हमें एक बार पुनः विश्व की अन्य सभ्यताओं की ओर संक्षिप्त-दृष्टि डालनी होगी, कि वे सृष्टि रचना के विषय में और क्या कहती हैं ?

ईसाई व इस्लाम प्रायः एक की सिद्धान्त की अपने अपने तरीके से प्रतिष्ठा करते हैं। साररूप में इनका मत निम्न प्रकार है -

The world was created 6000 years ago, God created the world with much pain and labor in six days. A miracle creation of Adam and eve was there & finally there was a world wide flood before creation. This theory is based on 'Old Bible's frist chapter of creative narration 'GENESIS'[8]

आधुनिक विज्ञान कहता है-

The initial singularity is a gravitational singularity predicted by general relativity to have existed before the BIG-BANG and thought to have esteemed all the energy and space time of the universe.

The universe began, scientist believe with every spark of its energy jammed into a very tiny point. This extremely dense point exploded with unimagible force creating matter and propelling it out-ward to make billion of galaxies of our vast universe.

Overall, we can very well say that the western theory of creation was greatly influenced by GREEK MYTHOLOGY.[9]

क्या आप पाश्चात्य विज्ञान जगत् की इसे हठधर्मिता नहीं मानेंगे कि ऋग्वेदीय-मंत्र-वर्णित सृष्टि-रचना के मूलभूत एवं प्राचीनतम सिद्धान्त की सर्वथा उपेक्षा कर उसने उसी की काल्पनिक कथा को महत्ता प्रदान की। विश्व के किसी भी दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक सिद्धान्त को ले लीजिए, निष्कर्ष सब का एक ही निकलता है - चाहे उसे आप 'TINY POINT' नाम दे दीजिए अथवा ऋग्वेदवर्णित शून्य में प्रचण्ड तेज से आलोकित परमात्म तत्त्व। सभी एक दूसरे के पर्याय हैं और सभी एक ही निष्कर्ष पर अपने अपने तरीके से पहुँच रहे हैं।

भारतीय दृष्टिकोण से साररूप में यही कहा जा सकता है, कि ऋग्वेद-वर्णित वह 'परब्रह्म-पुरुष' सृष्टिरचना से पूर्व रस-समुद्र रूप में असीम-अनन्त-अविज्ञात लोक में स्थित था - रसो वै सः' स्वरूप में था और उसी ने अपनी

कामना अथवा इच्छाशक्ति से बलरूप 'वेद एवं ऋषि' तत्वों के साथ संयोजन कर इस पञ्चपर्वा-सृष्टि की रचना की, जिसमें प्रथम दो लोक 'स्वयंभू एवं परमेष्ठी' हमारी लौकिक दृष्टि से अगोचर हैं और शेष तीन - सूर्य-पृथिवी-चन्द्र चर्मचक्षुओं से देखे जा रहे हैं। उसका वैशिष्ट्य सब में झलक रहा है और वह सागर से बिन्दु तक ब्रह्माण्ड से जीवात्म पर्यन्त विद्यमान है। जैसे मकड़ी अपने चारों ओर जाल बुन कर उसमें निवास करती है - तद्वत् वह 'परब्रह्म' सृष्टि का निर्माण कर उसमें अवस्थित है।

साथ ही यह भी शाश्वत-सत्य जान लेना चाहिए, कि जिस दिन जिस पल वह असत् रूप परब्रह्म चाहेगा, प्रतिसृष्टि के रूप में इस पञ्चपर्वा सृष्टि का क्रमशः विनाश कर स्वयं के उदर में समा लेगा। जैसा कि 'ईशोपनिषद्' के प्रारम्भ में कहा गया है - 'ईशावास्यमिदं सर्वम् यत्किं च जगत्यां जगत्....' उसने सृष्टिरचना अवश्य की है, पर उसका सम्पूर्ण नियन्त्रण और अनुशासन उस पर बना हुआ है। सारे लोक उससे भयभीत और कम्पायमान हैं, जिसके लिए 'कठोपनिषद्' में कहा गया है -

भयादस्याग्निस्तपति, भयात् तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च, मृत्युर्धर्षत पञ्चमः[10]**।।**

उस असत् रूप 'परब्रह्म' द्वारा रचित पञ्चपर्वा सृष्टि क्या है, इसका स्वरूप कैसा है, कैसे निर्माण हुआ, इसमें निहित मूल तत्त्व कौन से हैं, जिनकी मानव-सृष्टि में भूमिका है, - इसकी चर्चा हम अगली वार्ता में करेंगे।

।।ॐ तत् सत्।।

सन्दर्भ

1. पुरुष सूक्त
2. अथर्ववेद
3. The Cultural Principals about Veda's
4. नासदीयसूक्त
5. तैत्तिरीय उपनिषद्
6. छान्दोग्य उपनिषद्
7. मनुस्मृति
8. The Cultural Principals about Veda's
9. The Cultural Principals about Veda's
10. कठोपनिषद्